उच्च संस्थानों में यौन उत्पीड़न: शक्ति-असंतुलन का परिणाम

drishtiias.com/hindi/printpdf/sexual-harassment-in-higher-institutions-results-of-power-imbalances

यह लेख 22 अप्रैल, 2019 को द हिंदू समाचार पत्र में प्रकाशित “In his own cause: On complaint against CJI Ranjan Gogoi” का भावानुवाद है। इस लेख में उच्चतम न्यायालय जैसे बड़े संस्थान में यौन उत्पीड़न को संबोधित करने में प्रक्रियात्मक अपर्याप्तता के विषय में बात की गई है।

Quis custodiet ipsos custodes

लातिनी भाषा में इस मुहावरे का प्रयोग अक्सर सुकरात द्वारा ऐसे रक्षकों की तलाश के संदर्भ में किया गया है जो शक्ति/अधिकार को धारण करने के साथ ही इसके दुरुपयोग पर प्रतिबंध भी लगा सकते हैं।

- भारत के परिप्रेक्ष्य में यह वाक्यांश बहुत ही सटीक प्रतीत होता है जहाँ वर्तमान परिदृश्य में ऐसे प्रश्न सामने आ रहे हैं कि किसी भी अधिकार के दुरुपयोग को रोकने की केंद्रीय शक्ति कहाँ/किसमें निहित है?
- इसी के साथ एक सवाल यह भी है कि क्या निर्वाचित सरकार और विवादित संस्थानों (विशेष रूप से न्यायपालिका) की शक्तियों/अधिकार के मध्य भी कोई विवाद है।

भारतीय न्यायपालिका के संदर्भ में ‘who will guard the guardian syndrome' की प्रासंगिकता

- हाल ही में भारत के मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ यौन दुराचार का आरोप लगा, जिसके बाद मुख्य न्यायाधीश ने इस मामले को सार्वजनिक महत्त्व का मामला बताते हुए इसकी जाँच के लिये एक समिति गठित की इस समिति में स्वयं मुख्य न्यायाधीश तथा दो अन्य न्यायाधीश शामिल थे। इस पीठ ने मुख्य न्यायाधीश पर लगे आरोपों का खंडन किया अर्थात् भारत के मुख्य न्यायाधीश पर लगे आरोपों को झूठा/असत्य करार दिया गया।
- निश्चित ही यह कदम न्याय की निष्पक्षता और प्राकृतिक न्याय की धारणा के विरुद्ध था।

Nemo debet esse judex in causa propria sua

- इस वाक्यांश का अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को स्वयं के ऊपर लगे आरोप के मामले में न्यायाधीश नहीं बनाया जाना चाहिये।
- यह वाक्यांश ‘पूर्वाग्रह के खिलाफ नियम’ के रूप में लोकप्रिय है।
- प्राकृतिक न्याय की प्रमुख शर्त है कि निर्णय देने वाले प्राधिकरण की स्थापना ऐसे निष्पक्ष व्यक्तियों को शामिल करके की जानी चाहिये जो बिना किसी पूर्वाग्रह और निष्पक्षता के निर्णय दें। (यहाँ पर पूर्वाग्रह का तात्पर्य किसी पक्ष या मुद्दे के

संबंध में कुछ पूर्व-निर्धारित विचार या पूर्वनुकुलता से है)

Audi alteram partem

इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी मामले में निर्णय देने से पूर्व प्रत्येक पक्ष के विचार को सुना जाना चाहिये अर्थात् कोई भी पक्ष अनसुना न रह जाए।

अन्य प्रक्रियात्मक उल्लंघन

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, निषेध एवं निदान) अधिनियम

[Sexual Harassment of Women at the Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal Act) Act, ('POSH Act')]

POSH अधिनियम (सर्वोच्च न्यायालय के यौन उत्पीड़न नियमन, 2013 के साथ पढ़ा जाए) स्वयं CJI को, लगाए गए आरोपों की गोपनीयता को तय करने का अधिकार देता है। लेकिन यदि आरोप भारत के मुख्य न्यायाधीश के ही खिलाफ लगाए जाते हैं, तो इस संबंध में कोई भी प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है।

यौन उत्पीडन के मामले की जाँच में महिलाओं की भूमिका

यद्यपि POSH अधिनियम में यह भी उल्लेखित किया गया है कि यौन उत्पीड़न के मामले की जाँच करने वाली समिति की अध्यक्षता किसी महिला द्वारा की जानी चाहिये तथा इस समिति में अधिकांशतः सदस्य भी महिलाएँ ही होनी चाहिये, तथापि लेकिन CJI के मामले की सुनवाई करने वाली विशेष पीठ के गठन में इन नियमों का पालन नहीं किया गया।

महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता की भूमिका

- इस मामले को सर्वोच्च/उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं-प्रेरित याचिका (suo-motu writ petition) के रूप में दायर किया गया, जो प्रक्रियात्मक रूप से दोषपूर्ण है।
- इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय के बार काउंसिल के अध्यक्ष द्वारा बिना किसी जाँच के दिया गया दृढ़ समर्थन यह दर्शाता है कि न्यायपालिका में भी महिलाओं के स्थान का कोई अस्तित्त्व नहीं है।

न्यायाधीशों से पूछताछ संबंधित मुख्य प्रावधान और दस्तावेज़

भारतीय दंड संहिता **1860** की धारा **77**

इस धारा के अनुसार, न्यायिक रूप से सद्भाव में रहते हुए एक न्यायाधीश द्वारा किये गए किसी भी कार्य को अपराध नहीं माना जा सकता।

न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम, **1968** और न्यायाधीश (जाँच) नियम,**1969**

संविधान के अनुच्छेद 124 (5) के तहत स्थापित न्यायाधीश जाँच अधिनियम और नियमों के अनुसार 'न्यायाधीश' पद की अभिव्यक्ति में मुख्य-न्यायाधीश भी शामिल है और इसे कोई विशेष उपचार नहीं दिया जाएगा।

न्यायाधीश संरक्षण अधिनियम **1985**

- इस अधिनियम की धारा 3 न्यायिक कर्तव्यों के निष्पादन के दौरान किये गए कृत्यों हेतु किसी भी न्यायालय में किसी भी सिविल या आपराधिक कार्यवाही से न्यायाधीशों को संरक्षण प्रदान करती है।
- हालाँकि, सरकार न्यायाधीश (संरक्षण) अधिनियम, 1985 की धारा 3 की उपधारा (2) के तहत एक उच्च-न्यायालय के न्यायाधीश या पूर्व न्यायाधीश के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू कर सकती है, यदि इसके साक्ष्य मौजूद हों कि न्यायाधीश द्वारा रिश्वत लेकर निर्णय दिया गया है।

वीरस्वामी निर्णय **(1991)**

- वीरस्वामी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि किसी भी न्यायाधीश पर आपराधिक दंड संहिता के अंतर्गत तब तक कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं किया जा सकता है जब तक कि इस मामले में मुख्य-न्यायाधीश से सलाह नहीं ली जाती है। साथ ही सरकार को मुख्य-न्यायाधीश द्वारा व्यक्त की गई राय को उचित सम्मान देना चाहिये।
- यदि आरोप स्वयं मुख्य-न्यायाधीश पर लगे हो तो सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से राय ली जानी चाहिये।

विशाखा वाद **(1997)**

यदि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के खिलाफ आरोप लगे हों तो मुख्य-न्यायाधीश उन आरोपों की जाँच के लिये एक तीन सदस्यीय समिति का गठन करेगा जो किसी एक न्यायाधीश पर लगे आरोपों की सत्यता की जाँच करेगी और मुख्य न्यायाधीश इस समिति के निष्कर्षों की जाँच करने के बाद उन्हें लागू करेगा।

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध तथा निवारण) अधिनियम **2013;** साथ ही सर्वोच्च न्यायालय में लैंगिक संवेदीकरण एवं यौन उत्पीडन (रोकथाम, निषेध और निवारण) नियम **2013** तथा **2015**

वर्ष 2013 के विनियमों के तहत लैंगिक संवेदीकरण आंतरिक शिकायत समिति (Gender Sensitization Internal Complaints Committee-GSICC) के समग्र पर्यवेक्षण और नियंत्रण की शक्ति मुख्य न्यायाधीश के पास है, जिसमें GSICC के सदस्यों के नामांकन एवं नियुक्ति तथा आंतरिक शिकायत समिति द्वारा की गई जाँच के बाद दर्ज सिफारशों को स्वीकार या अस्वीकार करने की शक्ति भी शामिल है।

हालाँकि, न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं सार्वजनिक महत्त्व के संबंध में न्यायमूर्ति एस.ए.बोबडे के नेतृत्व में एक समिति का गठन करने के फैसले ने कुछ हद तक इस त्रुटि में सुधार किया।

लेकिन इसके बाद भी आगामी निर्णय भी पूर्वगामी निर्णयों की तरह ही दिये गए, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

- किसी वकील या एमिकस क्यूरी (न्यायालय द्वारा नियुक्त वकील) को महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नही थी।
- इस मामले की बाहरी जाँच की जानी चाहिये, यह सुनिश्चित करने का कोई अन्य तरीका नहीं है कि न्यायपालिका निष्पक्ष रूप से कार्यरत है अथवा नहीं।
- मुख्य-न्यायाधीश के मामले में पीड़ित महिला से कहा गया कि उसे गवाही (जो उस महिला ने दी है) की प्रतिलिपि

इसलिये नहीं दी गई क्योंकि इस जाँच को पूर्णतया गोपनीय रखा जाना था (इस प्रकार के मामलों में गोपनीयता को प्राथमिकता दी जाती है)।

- यह एक पक्षपातपूर्ण निर्णय था जो केवल एक पक्ष के हित में था और कानूनी तौर पर वैध होने के बावजूद भी यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय की निष्पक्षता पर सवाल खड़े करता है।
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता जनता के विश्वास पर टिकी हुई है और इस प्रकार की एक-तरफा जाँच से न्यायतंत्र पर जनता का विश्वास कायम नहीं रह सकता।
- इसके अलावा यह निर्णय दर्शाता है कि जब सर्वोच्च न्यायालय का ही कोई आंतरिक मामला सामने आता है तो शक्ति का दुरुपयोग, उचित प्रक्रिया और न्याय के मूल सिद्धांत का अनुपालन कुछ भी मायने नहीं रखता है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का प्रभाव

"संस्थागत जातिवाद" को दर्शाता है सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय

संस्थागत जातिवाद "अनजाने पूर्वाग्रह", "अज्ञान", या "विचारहीनता" की उपज है इसमें आंतरिक परिस्थितियों में किसी पर भी अत्याचार करने या किसी को नुकसान पहुँचाने के लिये सचेत इच्छा या प्रेरणा के बिना कार्य किया जाता है।

न्यायिक कुलीनतंत्र की मानसिकता को दर्शाता है यह निर्णय

- न्यायपालिका का अपना एक दृढ़ चरित्र है, साथ ही इसे एक निष्पक्ष और निस्वार्थ संस्था माना जाता है। न्यायपालिका से व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करने एवं स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से निर्णय देने की आशा की जाती है। इस संस्था में न्यायिक कुलीनतंत्र स्थापित हो जाने के कारण ही न्यायपालिका एक व्यक्तिगत संस्था के समान प्रतीत होती है एवं न्यायालय में एकता के नाम पर कुछ लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त हो जाते हैं।
- पिछले 20 वर्षों में भारत में यौन उत्पीड़न से संबंधित कानूनों में हुई बहुत धीमी रही है। वर्ष 1997 के विशाखा दिशा-निर्देशों से लेकर वर्ष 2013 के POSH अधिनियम एवं कुछ बुनियादी सिद्धांत, शक्ति का असंतुलन, प्रक्रियात्मक न्याय और जन अधिकारों की रक्षा से संबंधित बहुत से मुकदमे लड़े गए लेकिन उनमें से नाम मात्र के ही मामलों में अंतिम निर्णय दिया गया।
- #Metoo जैसे अभियानों में मानहानि के मुकदमों के साथ ही सर्वोच्च न्यायालय का हालिया निर्णय यह दर्शाता है कि यौन उत्पीड़न पर लड़ाई समाप्त हो गई है।
- वर्ष 2013 में पूर्व न्यायाधीश ए.के. गांगुली का मामला सामने आया जिसमें न्यायाधीशों की एक समिति ने सुनवाई कर यह माना कि शिकायतकर्त्ता का यौन उत्पीड़न हुआ है। इस निर्णय के बाद तत्काल प्रभाव से जस्टिस गांगुली को पश्चिम बंगाल के मानवाधिकार समिति के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा।

कुछ सुझाव

- निष्पक्ष निर्णय व प्रभावी सुनवाई प्रक्रिया के अनुपालन के लिये आवश्यक है कि संस्था की आंतरिक प्रक्रिया में संशोधन किया जाए या इसके लिये एक अलग समर्पित प्रक्रिया स्थापित की जाए। इस तरह का संशोधन यौन उत्पीड़न के मामलों में विभागीय जाँच के सिद्धांतों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये।
- न्यायालय को यह अधिकार है कि वह ऐसे मामलों की जाँच के लिये एक समिति गठित करे और समिति को मामले से संबंधित सभी प्रकार की जाँच हेतु शक्तियाँ प्रदान करे। इस समिति का गठन निर्धारित दिशा-निर्देशों के अनुसार किया जाना चाहिये और इसमें सभी का पर्याप्त प्रतिनिधित्त्व होना चाहिये।

वीरस्वामी मामले के निर्णय को लागू किया जाना चाहिये

वीरस्वामी मामले में निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने कहा था कि यदि मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ ही आपराधिक कदाचार का मामला दर्ज होता है तो सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से परामर्श करना अनिवार्य है। निश्चित रूप से इस निर्णय का पालन होना चाहिये।

प्रश्न: समाज में शक्ति-असंतुलन को संबोधित किये बिना, विशेष रूप से महिलाओं के लिये एक न्यायपूर्ण समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। इस संबंध में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका पर चर्चा करें।